ध्यावो आतम परम पवित्रा, नाशे आस्रव अति अपवित्रा।
निर्लोभी हो पाप नशाय, उत्तम शौच जजों सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम सत्यधर्म परधाना, सत्य समझ बिन नहिं कल्याणा।
तीर्थ प्रवर्ते सत्य वचन से, होय प्रतिष्ठा सत्य धर्म से॥
सत्य धर्म सबको सुखदाई, झूठ दुःखमय दुर्गति दाई।
बोलो हित-मित-प्रिय-सत्वयना, अथवा शान्त-मौन ही रहना॥
वस्तु स्वरूप यथार्थ पिछानो, करके स्वानुभूति श्रद्धानो।
तज परभाव रमो निज ही में, प्रगटे सत्यधर्म जीवन में॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो अतीन्द्रिय आनन्द आवे, विषयों में नहिं चित्त भ्रमावे।
तज प्रमाद सब हिंसा टारी, होओ उत्तमसंयम धारी॥
करि विचार देखो मन माँहीं, भोगों में सुख किंचित् नाहीं।
हस्ति मीन अलि पतंग हिरन सम, विषयों में दुख लहें मूढ़जन॥
हो विरक्त सब पाप नशावें, धरि संयम ज्ञानी सुख पावें।
उत्तम संयम शिवपद दाता, पूजो भाओ धारो ज्ञाता॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप निज में ही हो विश्रान्त, इच्छाएँ हो जावें शान्त।
सब ही सुख की इच्छा करें, आत्मबोध बिन सुख नहिं लहें॥
ज्यों-ज्यों भोग संयोग लहाय, आशा-तृष्णा बढ़ती जाय।
इच्छा पूरी कबहुँ न होय, करो निरोध सहज तप होय॥
बारह भेद व्यवहार कहाय, निश्चय तप सब कर्म नशाय।
अपनी-अपनी शक्ति प्रमान, उत्तम तप धारो बुधिवान॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दुखदायक विभाव सब त्याग, आत्मधर्म में धरि अनुराग।
चार प्रकार दान शुभ देय, त्रिविधि पात्र को दे यश लेय॥

औषधि अभय अहार सु जान, ज्ञानदान सब में परधान।
ज्ञान बिना भ्रमता तिहुँ लोक, आत्मज्ञान से पावे मोक्ष॥
निज को निज पर को पर जान, ज्ञानमयी कर प्रत्याख्यान।
सर्वदान दे हो निर्ग्रंथ, उत्तम त्याग धरे सो सन्त॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हूँ मैं एक शुद्ध चिन्मात्र, अन्य न मम परमाणु मात्र।
मोहादिक औपाधिक भाव, मेरे नहिं मैं ज्ञानस्वभाव॥
मैं स्वभाव से आनन्द रूप, द्विविध परिग्रह दुःख स्वरूप।
परिग्रह त्याग आकिंचन्य धर्म, धारि मुनीश्वर नाशें कर्म॥
श्रावक भी परिमाण कराहिं, परिग्रह में किंचित् रुचि नाहिं।
यों उत्तम आकिंचन सार, पूजो धारो भव्य संभार॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमआकिंचन्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम ब्रह्मचर्य अविकार, पूजों धर्म शिरोमणि सार।
कामभाव दुर्गति को मूल, भव-भव में उपजावे शूल॥
लहे न चैन करे कृत निंद्य, कामासक्त बढ़ावे बंध।
तातैं शील बाढ़ नौ धार, अपनो ब्रह्म स्वरूप निहार।
त्यागो दुखमय इन्द्रिय भोग, पावो ज्ञानानन्द मनोग।
जयवन्तो ब्रह्मचर्य अनूप, धारे सो होवे शिवभूप॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

मोह क्षोभ बिन परिणति, ही दशलक्षण धर्म।
भेदज्ञान करि धारिये, तजि क्रोधादि अधर्म॥

(तर्ज-हे दीन बन्धु श्रीपति...)

दशलाक्षणीक धर्म सहज सुःखकार है।
आनन्दमयी यह धर्म अहो मुक्तिद्वार है॥
दशलाक्षणीक धर्म ही नाशे विकार है।
जिनवर प्रणीत धर्म करे भव से पार है॥